

रानी केतकी की कहानी (एक उद्धरण)

इंशा अल्ला खान

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले । बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो । अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे, पुराने-धुराने, डाँग, बूढ़े घाग यह खटराए लाए । सिर हिलाकर, मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने - यह बात होते दिखाई नहीं देती । हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो । बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसि की न हो, यह नहीं होने का । मैंने उनकी ठंडी साँस का टहोका खाकर झुंझलाकर कहा - मैं कुछ ऐसा बढ-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगलियाँ नचाऊँ, और बे-सिर बे-ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें सुनाऊँ । जो मुझ से न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता ? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता ।